ओमप्रकाश गुप्ता

बनाम

उतरप्रदेश राज्य

(संम्बद्ध अपीलो सहित)

(एस.आर.दास मुख्य न्यायाधिपति, भगवती, वेंकटरामा अययर,

एस.के. दास एवं गोविन्दा मेनन न्यायाधिपति)

*विवक्षित निरसन - क्या भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1947 (1947 का II) की धारा 5(1) (सी) के द्वारा विवक्षित रूप से निरसित हुइ है- क्या लोक सेवक को धारा 409 भारतीय दण्ड संहिता लागू करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 काअतिलंघन करता है- क्या धारा 409 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अभियोजन हेतु भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 6 के तहत अभियोजन स्वीकृति आवश्यक है।*

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 तथा भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(सी) विशिष्ट व अलग है तथा भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1947 की धारा 5(1)(सी) के द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 निरसित होने का तो प्रश्न ही नहीं है।

*अमरेन्द्रनाथ रा ॅय बनाम राज्य,* ए.आइ.आर[1955] कलकता 236,

अनुमोदित

विधायिका का सामान्य परिस्थितियों में यह आशय नहीं रहा होगा कि भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, 1947 जैसा अस्थायी कानून भारतीय दण्ड संहिता जैसे प्राचीन कानून का अधिक्रमण करे।

उस दृष्टि से भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 तथा भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 5(1)(सी) के तहत दोनों अपराध विशिष्ट एवं अलग है। लोकसेवक को धारा 409 भारतीय दण्ड संहिता लागू करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिलंघन नहीं है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 के तहत अभियोजन हेतु भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, 1947 की धारा 6 के तहत अभियोजन स्वीकृति आवश्यक नहीं है।

*राज्य बनाम पाण्डुरंग बाबूराव* ए.आई.आर.(1955) बोम्बे 451, *भूपनारायण सक्सैना*

*बनाम राज्य,* ए.आई इ.आर.(1952) इलाहाबाद 35 तथा *राज्य बनाम गुलाबसिंह,* ए.आई इ.आर. (1954) राज. 211, अनुमोदित

*राज्य बनाम गुरूचरणसिंह,* (1952) पंजाब 89, निष्प्रभावित

आपराधिक अपीलिय क्षैत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्या 42/1954 तथा संख्या 3/1955 व 97/1955

सत्र न्यायाधीश, कुमाऊ द्वारा आपराधिक अपील संख्या 42/1953(एन) में दिनांक 24 जून, 1953 को पारित निर्णय व आदेश से उदभूत आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1113/1953 में दिनांक 7 जुलाई 1953 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आदेश के विरूद्ध विशेष अनुमति अपील। अपील अन्तर्गत अनुच्छेद 134(1)(सी) संविधान विरूद्ध निर्णय व आदेश दिनांक 23 दिसम्बर, 1954 द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय (लखनऊ बेंच) जो कि आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 141/1951 तथा आपराधिक विविध आवेदन संख्या 454/1952 व 159/1953 में पारित हुआ, जो सिविल एवं सेंशन्स न्यायाधीश, सीतापुर द्वारा आपराधिक रिविजन संख्या 5/1951 में दिनांक 4 जून, 1951 को पारित निर्णय व आदेश से उदभूत हुई । विशेष अनुमति अपील विरूद्ध निर्णय व आदेश दिनांक 16 जनवरी 1952, जो कि आपराधिक रिविजन संख्या 216/1951 में न्यायिक कमीश्नर न्यायालय विंध्यप्रदेश, रेवा द्वारा पारित किया गया जो कि सत्र न्यायाधीश,रेवा द्वारा आपराधिक अपील संख्या 14/1951 में दिनांक 29 सितम्बर, 1951 को पारित निर्णय व आदेश से उदभूत हुई ।

आपराधिक अपील संख्या 42/1954 में *एस.सी.ईसाक्स एवं पी.सी. अग्रवाल* अपीलार्थी की ओर से।

आपराधिक अपील संख्या 3/1953 में *एस.सी.ईसाक्स एवं* ओ *एन. श्रीवास्तव* अपीलार्थी की ओर से।

आपराधिक अपील संख्या 97/1955 में *एस.सी.ई इसाक्स, जे.बी. दादाचन्जी, एस.एन अण्डले एवं रामेश्वर* नाथ अपीलार्थी की ओर से।

आपराधिक अपील संख्या 42/1954 एवं 3/1955 में *जी.सी. माथुर एवं सी.पी.लाल* प्रत्यर्थी की  ओर से।

आपराधिक अपील संख्या 97/1955 में *पौरस ए. मेहता औैर आर.एच.ढेबर* प्रत्यर्थी की ओर से। 11 जनवरी 1957 को न्यायालय का निर्णय सुनाया गया द्वारा -

**गोविन्दा मेनन, न्यायाधिपति-** हालाँकि ये तीन अपीलें अलग-अलग अदालतों के फैसलों के खिलाफ दायर की गई हैं और उदेश्य की साम्यता या अभियुक्तों की पहचान के संबंध में जुड़ी  हुई नहीं हैं, लेकिन उन्हें एक साथ सुना गया है, क्योंकि उनमें उठाए गए कानून के बिंदु समान हैं और वकीलो की बहस भी समान श्रेणी की है। इसलिए कानूनी पहलू के निर्धारण में एक समान निर्णय इन परिस्थितियों में उपयुक्त होगा।

1954 की आपराधिक अपील संख्या 42 को ओम प्रकाश गुप्ता ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा उनकी पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने के खिलाफ दायर किया है, जिससे कुमाऊं के सत्र न्यायाधीश के अपीलीय फैसले की पुष्टि हुई, जिन्होंने विशिष्ट मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, नैनीताल द्वारा, 30 अप्रेल, 1953 को अपीलार्थी को धारा 409 भारतीय दण्ड संहिता के तहत पारित एक वर्ष का कठोर कारावास व 500 रूपये अर्थदण्ड के

दण्डादेश को बरकरार रखा। यह अपीलार्थी हल्दवानी नगरपालिका बोर्ड के इलेक्ट्रिक विभाग में लिपिक था और उसके खिलाफ आरोप यह था कि उसने तीन धनराशि प्राप्त कीः

रु. 242/5/9 (प्रदर्श पी. 14) 28 जुलाई 1951 को,

रु. 70/- (प्रदर्श पी. 17) 19 अक्टूबर 1951 को,

रु. 135/- (प्रदर्श पी. 13) 23 अक्टूबर 1951 को।

कुल मिलाकर रु. 44759 और पूरी राशि का गबन किया, हालांकि उसका बचाव यह था कि धन प्राप्त करने के बाद, उसने इसे अपने आधिकारिक वरिष्ठ, इलेक्ट्रिकल इंजीनियर पांडे को दे दिया; और पैसे से ज्यादा कोई लेना देना नहीं था। पुलिस का आरोप पत्र भारतीय दंड संहिता की धारा 409 और 467 के तहत था लेकिन सजा केवल पूर्व धारा के तहत थी। विचारण न्यायालय द्वारा उस पर अधिरोपित दोषसिद्धि और सजा की विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा अपील में पुष्टि की गई है और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा उसके पुनरीक्षण को खारिज करते हुए भी इसकी पुष्टि की गई है, अब अपील का विषय बन गया है, क्योंकि उठाए गए कानून के सवाल पर विशेष अनुमति स्वीकृत की गयी है।

1955 की आपराधिक अपील संख्या 3 में अपीलकर्ता ओम प्रकाश ने 1951 की आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 141 में उस अदालत की पूर्ण पीठ की राय के खिलाफ इलाहाबाद उच्च न्यायालय से अपील करने की अनुमति

प्राप्त की थी, जिसके द्वारा 1951 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 5 में सीतापुर के सिविल और सत्र न्यायाधीश के आदेश में, यह माना गया कि ओम प्रकाश को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 के अपराध के तहत विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अनुचित तरीके से उन्मोचित किया गया था, और मजिस्ट्रेट को आगे की जांच करने का निर्देश दिया गया था, उसकी पुष्टि की गई थी। उस अपराध के मामले में यह उल्लेख किया जा सकता है कि विद्वान प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट ने माना कि ओम प्रकाश के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी आवश्यक थी और चूंकि वह मंजूरी नहीं दी गई थी, इसलिए अभियोजन चलने योग्य नहीं था। इस दृष्टिकोण को विद्वान सत्र न्यायाधीश के हाथों स्वीकृति नहीं मिली, जिनके निर्णय की पुष्टि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने की थी। उसके खिलाफ आरोप यह था कि एक डिविजनल इंजीनियर के कार्यालय में एक नहर लेखाकार के रूप में उसने एक निश्चित राशि का आपराधिक न्यासभंग किया था।

1955 की आपराधिक अपील संख्या 97 में अपीलार्थी लाल रामगोविंद सिंह, भारतीय राज्य रीवा में कृषि निदेशक थे और 4 दिसम्बर, 1948 को रुपये 586/10/- की राशि का आपराधिक न्यासभंग करने के अपराध के लिए उस पर 13 अगस्त 1949 को भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के तहत मुकदमा चलाया गया और जांच के बाद 24 फरवरी 1950 को उसके खिलाफ आरोप तय किए गए, जिसके परिणामस्वरूप 29 सितम्बर, 1950 को विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि का निर्णय सुनाया गया तथा एक

वर्ष के कठोर कारावास व 500/- रूपये अर्थदण्ड की सजा सुनाई। सत्र न्यायाधीश को प्रस्तुत उसकी अपील 29 सितंबर, 1951 को खारिज कर दी गई और 16 जनवरी, 1952 को न्यायिक आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण का भी वही हश्र हुआ। उसे विशेष अनुमति स्वीकृत की गई जिसका नतीजा 1955 की आपराधिक अपील संख्या 97 थी।

पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 409, जहां तक यह एक लोक सेवक पर लागू होती है (इस मामले में तीन अपीलकर्ता स्वीकृत रूप से लोक सेवक थे), भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1947 के II की धारा 5(1)(सी) तथा 5(2) से निरसित हो जाती है और यदि ऐसा है, तो क्या अपेक्षित मंजूरी के बिना और भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम के प्रावधानों के अनुपालन के बिना आपराधिक न्यासभंग के अपराध के लिए अपीलकर्ताओं पर मुकदमा चलाना पोषणीय है। हमारे सामने दो अन्य प्रश्न भी उठाए गए हैं और वे हैं: यह मानते हुए कि ऐसा कोई निहित निरसन नहीं था, क्या एक लोक सेवक पर भारतीय दंड संहिता की धारा 409 लागू करना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करेगा। अब यह कि लोक सेवक द्वारा न्यासभंग के संबंध में भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम के प्रावधान एवं उसके तहत विहित प्रक्रिया उपलब्ध है, और

अगला, यदि अपीलार्थी पहले दो बिंदुओं पर सफल नहीं होते हैं, तो भ्रष्टाचार निवारक अधिनयम द्वारा अपेक्षित आवश्यक मंजूरी का प्रावधान भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के तहत अभियोजन पर भी लागू होगा।

सबसे पहले यह निर्धारित किया जाना है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 409 उसी अपराध से संबंधित है जो भ्रष्टाचार निवारक अधिनयम की धारा 5(1) (सी) और 5(2) के तहत विचारित है, और यदि हां तो, क्या एक ही क्षेत्र में कानून का अच्छादन हुआ है और बाद वाले ने पहले वाले को अंतर्निहित रूप से निरस्त कर दिया है। उस उद्देश्य के लिए दोनों क़ानूनों के पूर्ण दायरे और महत्व को समझने के लिए दोनों क़ानूनों के प्रावधानों का संक्षेप में विश्लेषण किया जाना होगा।

भारतीय दंड संहिता के अध्याय XVII में शामिल धाराओ की पुलिका भारतीय दंड संहिता की धारा 405 से शुरू होती है और भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के साथ समाप्त होती है, जो आपराधिक न्यासभंग से संबंधित है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 आपराधिक न्यासभंग को परिभाषित करती है और भारतीय दंड संहिता की धारा 409 आपराधिक न्यासभंग का एक गंभीर रूप है, जब यह कार्य किसी लोक सेवक, बैंकर, व्यापारी, आदि द्वारा किया जाता है। धारा 405 का विश्लेषण भारतीय दंड संहिता के घटक तत्वों में यह देखा जाता है कि इस धारा के क्रियान्वयन के लिए निम्नलिखित आवश्यक तत्व नितांत आवश्यक हैं:

(i) अभियुक्त को संपत्ति या संपत्ति पर प्रभुत्व न्यस्त किया हुआ होना चाहिए;

(ii) इस प्रकार न्यस्त किये गए व्यक्ति ने बेईमानी से उस संपति का दुर्विनियोग किया हो या  अपने स्वयं के उपयोग के लिए संपरिवर्तित किया हो,

(बी) उस संपत्ति का बेईमानी से उपयोग या व्ययन किया हो या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति का ऐसा करना सहन करता हो,

(I) इस तरह के न्यास का निर्वहन करने का तरीका निर्धारित करने का विधि का निर्देश हो,

(II) जो उस न्यास के निर्वहन के बारे में विधिक अनुबंध किया हो

उपरोक्त मामलों में उसने आपराधिक न्यासभंग कारित करना कहा जाता है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 409 दंड का प्रावधान करती है जब ऐसा आपराधिक न्यासभंग किसी लोक-सेवक, बैंकर, व्यापारी आदि द्वारा किया जाता है।

अब हमें आपराधिक कदाचार से संबंधित भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम के प्रावधानों को जानना है।

अधिनियम की प्रस्तावना यह स्पष्ट करती है कि इसका उद्देश्य रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए अधिक प्रभावी प्रावधान बनाना था। इससे स्वमेव यह स्पष्ट है कि विधायिका इस तथ्य से अवगत थी कि लोक सेवकों द्वारा रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के मामले में भारतीय

दंड संहिता की धारा 409 से अधिक सख्त और कठोर कुछ आवश्यक था और यह उस इरादे को क्रियान्वित करने के लिए अधिनियम को क़ानून की किताब में संहिताबद्ध किया गया।पहली बार में उक्त कानून की अवधि केवल पांच साल की अवधि के लिए थी, जिसे बाद में 1952 के अधिनियम II द्वारा दस साल के लिए बढ़ा दिया गया था, जिसका अर्थ यह होगा कि अधिनियम स्वमेव 1957 के मध्य तक समाप्त हो जाएगा।

धारा 3 में कहा गया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 161,165 और 165-ए के तहत अपराध जो दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत संज्ञेय नहीं थे, उन्हें संज्ञेय बनाया गया। धारा 5 अधिनियमित करती है कि जहां कोई लोक सेवक कानूनी पारिश्रमिक के अलावा अन्य परितोषण स्वीकार करता है, सहमत होता है या प्राप्त करता है, तो जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, यह उपधारित किया जायेगा कि उसने उस परितोष या मूल्यवान वस्तु को स्वीकार किया, प्राप्त किया या स्वीकार करने के लिए सहमत हुआ या प्राप्त करने का प्रयास किया, जो कि धारा 161, आदि आदि में उल्लेखित हेतु व प्रतिफल जैसा हो। धारा 4 की उपधारा 2 भी इसी उपधारणा से संबंधित है। हमारा इन अपीलों में धारा 5 से ताल्लुक हैं । धारा 5 की उप- धारा 1(ए) और 1 (बी), जिसे एक लोक सेवक द्वारा पदीय कर्तव्य के निर्वहन में *आपराधिक कदाचार* के रूप में नामित किया गया है, उन व्यक्तियों से संबंधित है जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 में उल्लेखित हेतु व प्रतिफल की तरह आदतन कानूनी

पारिश्रमिक के अलावा अन्य परितोषण स्वीकार करते हैं या प्राप्त करते हैं या प्राप्त करने के लिए सहमत होते हैं। इन दोनों उप-खंडों पर विस्तार से विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रस्तुत मामलों में अवैध परितोषण की स्वीकृति का कोई सवाल ही नहीं है, लेकिन एक बात जो याद रखनी होगी वह यह है कि ये उप-धाराएं आदतन स्वीकृति या प्राप्त करने आदि से संबंधित हैं। जबकि धारा 161 और 165 यहां तक कि एकल स्वीकृति या प्राप्ति से संबंधित हैं। इसका परिणाम यह है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 165 के तहत एक एकल कार्य के मामले में भी अभियोजन चलाया जा सकता है जिसके द्वारा एक लोक सेवक ने अवैध परितोषण स्वीकार किया है, लेकिन धारा 5(1)(ए) और 5(1)(बी) को आकर्षित करने के लिए अपराध का आदतन कारित होना चाहिए। धारा 5(1)(ए) और 5(1)(बी)में विहित अपराध की धारा के दायरे में लाने के लिए कोई भी छिटपुट या एकल घटना पर्याप्त नहीं होगी। इसका परिणाम यह है कि धारा 5(1)(ए) और 5(1)(बी) के तहत अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 165 के तहत अपराध का एक गंभीर रूप है।

जैसा कि हमारा ताल्लुक धारा 5(1)(सी) से हैं, इसे विस्तृत उद्धृत किया जाता है:

> "यदि वह एक लोक सेवक के रूप में उसे न्यस्त गई या उसके नियंत्रण में आने वाली किसी संपत्ति का बेईमानी से या कपटपूर्वक दुर्विनियोग करता है या अन्यथा अपने

उपयोग के लिए संपरिवर्तित करता है या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने की अनुमति देता है।"

धारा 5(1)(डी) में यह प्रावधान है कि यदि कोई लोक सेवक भ्रष्ट या अवैध साधनो से या अन्यथा लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करके, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है, तो वह ऐसा अपराध करता है।

धारा 5(2)आपराधिक कदाचार के अपराध को सात वर्ष तक के कारावास या अर्थदण्ड या दोनों से दंडनीय बनाती है। उपधारा (3) इस आशय का एक महत्वपूर्ण कानून है कि जहां किसी व्यक्ति को धारा 5(1) के तहत आरोपित किया जाता है और यह पाया जाता है कि आरोपी व्यक्ति अपने आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक आर्थिक संसाधनो या असंगत संपति का संतोष जनक हिसाब नहीं देता है, तो यह तथ्य कि उसके पास इतने व्यापक आर्थिक संसाधन या संपत्ति है, जब तक कि विपरीत साबित न हो जाए यह उपधारित करने के लिए पर्याप्त है कि आरोपी व्यक्ति अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में आपराधिक कदाचार का दोषी था और केवल इस कारण उस अपराध की दोषसिद्धि अवैध नहीं होगी कि यह पूरी तरह से एेसी उपधारणा पर आधारित है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जहां किसी व्यक्ति पर आपराधिक कदाचार का आरोप है और यह पाया जाता है कि उसके पास ऐसी संपत्ति या आय है, जिसे उसके द्वारा पदीय पारिश्रमिक द्वारा संग्रहित या अर्जित नहीं किया जा सकता है, जो उसने प्राप्त किया है तो

अदालत को इस निष्कर्ष पर पहुंचने का यह अधिकार है कि ऐसी संपत्ति का संचयन रिश्वतखोरी या भ्रष्टाचार के कारण हुआ था और व्यक्ति आपराधिक कदाचार के अपराध का दोषी है। ऐसी उपधारणा भारतीय दंड संहिता की धारा 161, 165, और 409 के तहत अभियोजन के मामले में नहीं की जा सकती है ।

धारा 6 में प्रावधान है कि धारा 5(2) के तहत आपराधिक कदाचार के अपराध के अभियोजन के लिए या भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 या 165 के तहत अपराध के लिए, केंद्र सरकार या राज्य सरकार या सरकारी कर्मचारी को हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। क़ानून का अंतिम खंड एक आपराधिक मामले में स्थापित होने तक की प्रक्रिया से छुटा हुआ व असमान है और उसके कारण एक आरोपी व्यक्ति को उसकी ओर से गवाह बनने के लिए सक्षम माना जाता है। जबकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 342 के तहत, जैसा कि हालिया संशोधन से पहले था, कोई भी आरोपी व्यक्ति शपथ दिलाने का हकदार नहीं था और इस तरह उस मामले में अदालत में गवाही देने के लिए सक्षम नहीं था, जिसमें वह आरोपी है; धारा 7 के तहत कोई भी व्यक्ति जिस पर भारतीय दण्ड संहिता की घारा 161 या धारा 165 या 165-ए के तहत या भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (2) के तहत दंडनीय अपराध का आरोप लगाया गया है, वह बचाव के लिए सक्षम साक्षी है और उसके खिलाफ या उसी मुकदमे में उसके साथ आरोपित किसी भी व्यक्ति के

खिलाफ लगाए गए आरोपों का खंडन करने के लिए शपथ पर साक्ष्य दे सकता है और ऐसी गवाही देने के मामले में कुछ सुरक्षा उपाय भी उपलब्ध कराए गए हैं।

अब हमने 1947 के अधिनियम II के प्रासंगिक प्रावधान का उल्लेख किया है, जिसमें हमारे इस विचार के लिए एक सबसे महत्वपूर्ण धारा 5(1)(सी) है ।भारतीय दंड संहिता की धारा 405 और 1947 के अधिनियम II की धारा 5(1)(सी) के बीच तुलना करना उपयोगी होगा।भारतीय दंड संहिता की धारा 405 आौर भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 5(1)(सी) के तहत न्यस्त करने का प्रश्न समान है। जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तहत बेईमानी से उस संपत्ति का दुर्विनियोग या अपने स्वयं के उपयोग के लिए संपरिर्वतन आवश्यक मानदंड होगा, धारा 5 (1) (सी) के संबंध में दुरुपयोग या संपरिर्वतन या तो बेईमानी से या कपटपूर्वक या अन्यथा हो सकता है।

धारा 5(1) (डी) के तहत एक और तथ्य है कि यदि लोक सेवक भ्रष्ट या अवैध तरीकों से या अन्यथा लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करता है और अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है तो वह अपराध का दोषी होगा। इसलिए, हम नीचे दो धाराओं के घटक तत्व उल्लेखित करते है:--

*भारतीय दंड संहिता की धारा 405*

1. किसी भी व्यक्ति को संपत्ति या संपत्ति पर कोई प्रभुत्व न्यस्त करना।

2. जिसे न्यस्त किया गया उस व्यक्ति द्वारा

(ए) बेईमानी से उस संपति का दुर्विनियोग करना या अपने स्वयं के उपयोग के लिए संपरिवर्तित करना,

(बी) उस संपत्ति का बेईमानी से उपयोग या व्ययन करना या जानबूझकर उल्लघंन कर किसी अन्य व्यक्ति का ऐसा करना सहन करना है,

(i) इस तरह के न्यास का निर्वहन करने का तरीका निर्धारित करने का विधि का निर्देश हो,

(ii) जो उस न्यास के निर्वहन के बारे में विधिक अनुबंध किया हो

*1947 का भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम // : धारा 5(1)* :

(सी) एक लोक सेवक के रूप में उसे न्यस्त की गई या उसके नियंत्रण के तहत किसी भी संपत्ति का बेईमानी से या कपटपूर्वक दुर्विनियोग करना या अन्यथा अपने स्वयं के उपयोग के लिए संपरिवर्तित करना या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने की अनुमति देना।

(डी) यदि वह भ्रष्ट या अवैध तरीकों से या अन्यथा लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करता है, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

अब भारतीय दंड संहिता की धारा 24 में परिभाषित 'बेईमानी से' का तात्पर्य एक व्यक्ति को अनुचित लाभ और किसी अन्य व्यक्ति को अनुचित नुकसान पहुंचाने के इरादे से कुछ भी करना है और धारा 25 'कपटपूर्वक' को कपट करने के आशय से परन्तु अन्यथा नहीं, कोई काम करने के रूप में परिभाषित करती है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि धारा 5(1)(सी) का दायरा भारतीय दंड संहिता की धारा 405 से अधिक व्यापक है।

अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील का तर्क यह है कि यद्यपि दोनों प्रावधानों के तहत अपराध एक जैसा हैं, लेकिन जहां मुकदमा धारा 5(1)(सी) के तहत है, वहां कुछ फायदे भी हैं और कुछ नुकसान भी हैं। फायदे निम्न हैं:--

(1) एक लोक सेवक द्वारा आपराधिक कदाचार के लिए सजा, आपराधिक न्यासभंग की सजा से कम है;

(2) धारा 5(1)(सी) के तहत अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी प्राप्त करना आवश्यक है, जबकि एक लोक सेवक द्वारा आपराधिक न्यासभंग के मामले में, ऐसी मंजूरी आवश्यक हो भी सकती है और नहीं भी;

(3)धारा 5(1)(सी) के तहत किसी अपराध की जांच उच्च श्रेणी के अधिकारी द्वारा की जा सकती है, हालांकि जहां तक प्रस्तुत अपीलों का संबंध है, ऐसा नहीं है, और

(4) आरोपी व्यक्ति को अपनी ओर से साक्ष्य देने का अधिकार है।

नुकसान यह है कि ऐसे विचारण में धारा 4(3) में निर्दिष्ट उपधारणा आरोपी के खिलाफ की जा सकती है यदि यह पाया जाता है कि उसके पास आय के ज्ञात स्रोतों से असंगत आर्थिक संसाधन या संपत्ति है और किसी लोक सेवक द्वारा किसी व्यक्ति से मूल्यवान वस्तु की स्वीकृति के बारे में दो उपधारणाएँ भी है, जैसा कि धारा 4 की उपधारा (1) और (2) में विहित है। अपीलार्थी के विद्वान वकील के अनुसार, ये अंतर किसी भी तरह से धारा 5(1)(सी) के तहत अपराध को भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के तहत अपराध से अलग नहीं बनाते हैं, बल्कि यह केवल एक निर्धारित प्रक्रिया का दूसरा तरीका है और जब धारा 5(1)(सी) के तहत किसी अपराध की जांच या मुकदमा चलाया जाता है तो दृष्टिकोण का एक अलग तरीका निर्धारित है।

श्री इसहाक दृढ़तापूर्वक निवेदन करते हैं कि यदि दो अलग-अलग क़ानून हैं, एक दूसरे की तुलना में बाद में अधिनियमित किया गया है, और यदि बाद का क़ानून एक ही विषय वस्तु से संबंधित है, तो दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं और पहले वाले को निरर्थक या प्रतिकूल होकर निरसित माना जाना चाहिए। नतीजा यह है कि जबकि इस मामले में एक ही विषय

वस्तु से संबंधित दंडात्मक क़ानून हैं और क़ानून द्वारा निर्धारित दंड और प्रक्रिया एक-दूसरे से भिन्न हैं, तो बाद वाले से पहले वाले को निरस्त या अधिक्रमित की तरह लिया जाना चाहिए।

*जवेरभाई अमैदास बनाम द स्टेट आॅफ बाॅम्बे*([1]) में समाहित कुछ टिप्पणियों का आश्रय लिया गया है, जिसमें *स्मिथ बनाम बेनाबो* ([2]) में न्यायाधिपति गोडार्ड के फैसले से निम्नलिखित उद्धरण शामिल हैं:--"वह यदि बाद का क़ानून फिर से पिछले क़ानून द्वारा बनाए गए अपराध का वर्णन करता है, और एक अलग सज़ा लगाता है, या प्रक्रिया बदलता है, तो पहले वाला क़ानून बाद के क़ानून द्वारा निरस्त हो जाता है: *मिशेल बनाम ब्राउन*([3]) देखें, लॉर्ड कैंपबेल और *ओंटारियो के लिए अटॉर्नी-जनरल बनाम राज्य के लिए अटॉर्नी-जनरल।*([4])

इस आधार पर कि 1947 के अधिनियम II की धारा 5(1) (सी) लोक सेवकों के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 409 का वह हिस्सा समान विषय से संबंधित है, श्री इसाक ने हमारा ध्यान *राज्य बनाम गुरचरण सिंह*([5]) की ओर आकर्षित किया, उस मामले में न्यायाधिपति फाल्शॉ ने स्वयं और न्यायाधिपति खोसला की एक पीठ के फैसले को सुनाते हुए कहा कि जब तक 1947 के अधिनियम II की धारा 5 प्रभाव में रहेगी, तब तक भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के प्रावधान जहां तक यह लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों से संबंधित है, निरस्त रहेगें। विद्वान न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख करने के

बाद उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचे। सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 26 और उसके समकक्ष, व्याख्या अधिनियम की धारा 33 और क़ानून की व्याख्या पर मैक्सवेल के अनुच्छेदों काे ध्यान में लेने के बाद, विद्वान न्यायाधीश की राय थी कि यह अनुमान लगाना संभव नहीं है कि कोई विवक्षित निरसन नहीं था।

इससे पहले कि हम भारतीय मामलों पर ध्यान दें, इस संबंध में पहली बात जो याद

(1) [1955] 1 एस.सी.आर. 799 (4) [1896] ए.सी. 348

(2) [1937] 1 के.बी. 518 (5) [1952] पंजाब 89

(3) [1858] 1 एफ.& ई. 267, 274, 117, आर.आर.206

रखनी होगी वह यह है कि भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम एक अस्थायी कानून है, विधायिका का परिस्थितयों के सामान्य अनुक्रम में यह आशय नहीं रहा होगा कि एक प्रश्नगत जैसा अस्थायी कानून प्राचीन कानून का स्थान ले लेगा, चाहे यदि मामला उसी क्षैत्र का हो। सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 6(ए) के तहत यदि समय के साथ एक अस्थायी क़ानून जिसने पहले के क़ानून को निरस्त कर दिया था, समाप्त हो जाता है, तो अस्थायी क़ानून की समाप्ति से पहले वाले का पुनरुत्थान नहीं होगा।

*राज्य बनाम पांडुरंग बाबूराव*(1) मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने माना कि भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 5(4)में

विधायिका द्वारा इस्तेमाल की गई भाषा स्पष्ट रूप से किसी भी सुझाव को अस्वीकार करती है कि विधायिका का आशय भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 को निरस्त करने का रहा हो, यह भी नहीं माना जा सकता कि भारतीय दंड संहिता की धारा 409 को भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम द्वारा निहित रूप से निरस्त कर दिया गया है क्योंकि यह कहना असंभव है कि दोनों के प्रावधान पूरी तरह से असंगत हैं या कि दोनों क़ानून एक साथ पूरी तरह से बेतुके परिणाम देंगे। इसलिए, अभियोजन पक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के तहत या 1952 के अधिनियम LIX द्वारा बाद वाले अधिनियम में संशोधन से पहले भी भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 5(2)के तहत मुकदमा चला सकता था और यदि धारा 409 के तहत अभियोजन शुरू किया गया था और यदि अभियुक्त की स्थिति ऐसी थी कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी और इस तथ्य के होते हुए कि धारा 5(2) के तहत अभियोजन चलाया जाता व स्वीकृति आवश्यक होती तो अभियोजन अच्छा है तथा दोषसिद्धि उचित है। विद्वान न्यायाधीशों ने *राज्य बनाम गुरचरण सिंह*(सुप्रा) में न्यायाधिपति फाल्शॉ द्वारा व्यक्त की गई राय से असहमति जताई और पहले के कुछ बॉम्बे के मामलों को भी निष्प्रभावी कर दिया। यह अदालत बोम्बे उच्च न्यायालय की उक्त पूर्ण पीठ के फैसले में विद्वान मुख्य न्यायाधिपति द्वारा व्यक्त राय से सहमत है।

मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति रामास्वामी, *आरसी वी. बनाम सत्यनारायणमूर्ति*([2]), के मामले में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की

(1) ए.आई .आर. [1955] बोम्बे 451

(2) ए.आई इ.आर.[1953] मद्रास

धारा 5(1)(सी) भारतीय दंड संहिता की धारा 409 को निरस्त नहीं करती है, और तदनुसार उन्होंने *राज्य बनाम गुरचरण सिंह*(सुप्रा) के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण से असहमति जताई।

*अमरेंद्र नाथ रॉय बनाम बनाम राज्य*([1]) के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने *राज्य बनाम गुरुचरण सिंह*(सुप्रा)से असहमति जताते हुए एक समान दृष्टिकोण अपनाया है। इस दिशा में निर्णयविधि का एक बड़ा समूह है और निम्नलिखित को छोड़कर सभी का उल्लेख करना अनावश्यक है:

(ए) *महम्मद अली बनाम राज्य,*([2])

(बी) *भूप नारायण सक्सेना बनाम राज्य,*([3])

(सी) *गोपाल दास बनाम राज्य,*([4])

इन सभी मामलों के विपरीत *राज्य बनाम गुरचरण सिंह*(सुप्रा) में पंजाब उच्च न्यायालय की लंबी आवाज केवल असहमतिपूर्ण है और मामले

पर ध्यान से विचार करने के बाद, हमें ऐसा लगता है कि पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अच्छा नहीं है।

अब हम इस पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या दोनों धाराआे का सार, आशय व अन्तर्वस्तु विषय समान हैं और हमारी राय में राज्य की ओर से की गई इ बहस बहुत बल रखती है, जब यह सुझाव दिया जाता है कि 1952 के संशोधन अधिनियम को अधिनियमित करके और धारा 5 की उपधारा 4 को बनाकर विधायिका ने विशेष रूप से यह कहा कि धारा 5(1)(सी) के तहत अपराध किसी भी दंडात्मक क़ानून के तहत पिछले मौजूदा अपराधों से अलग है और इसलिए, निरस्तीकरण के बारे में परिकल्पना की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती है। उप- धारा 4 में प्रयुक्त शब्द "कोई अन्य कानून" ने स्थिति को काफी साफ और सुस्पष्ट कर दिया है। अन्य कानून का मतलब समान कानून नहीं है, ऐसी स्थिति में 'अन्य' शब्द का कोई अर्थ नहीं होगा। इस फैसले के प्रारंभिक चरण में हमने पहले ही दो अपराधों के विभिन्न तत्वों को सारणीबद्ध कर लिया है और इन तत्वों की स्पष्ट तुलना और अनुबंध से पता चलेगा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तहत एक अपराध धारा 5(1)(सी) के तहत अपराध से अलग और विशिष्ट है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 आैर धारा 5(1)(सी)के बीच अंतर के तीन बिंदु हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 405 में विचारित बेईमानीपूर्ण दुर्विनियोग अलग है; जबकि धारा 5(1)(सी) के तहत यह या तो बेईमानीपूर्ण दुर्विनियोग है या कपटपूर्ण

दुर्विनियोग है। बाद वाली धारा पहले की तुलना में आयाम में बहुत व्यापक है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 में

(1) ए.आई .आर.[1955] कलकता 236 (3) ए.आई .आर. [1952] इलाहाबाद 35

(2) ए.आई .आर.[1937] कलकता 681 (4)ए.आई इ.आर. [1954] इलाहाबाद 80

इस्तेमाल किए गए शब्द हैं "कानून के किसी भी निर्देश का उल्लंघन है जो उस तरीके को निर्धारित करता है जिसमें किसी कानूनी अनुबंध, व्यक्त या निहित ऐसे ट्रस्ट का निर्वहन किया जाना है" धारा 5(1)(सी) में ऐसी कोई अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जहां भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तहत अपराध का गठन होने के लिए तीन आवश्यक तत्व हैं, उनमें से प्रत्येक अलग और विशिष्ट है, धारा 5(1)(सी) में केवल दो हैं। अब धारा 5(1)(सी) पर विचार करें तो इसमें कुछ ऐसे मामले हैं जो भारतीय दंड संहिता की धारा 405 में नहीं हैं।'प्रभुत्व' और 'न्यस्त करना' शब्द दो अलग-अलग चीजों को दर्शाते हैं। 'प्रभूत्व' शब्द धारा 5(1)(सी) में नहीं है । हम पहले ही बता चुके हैं कि 'कपटपूर्वक' शब्द धारा 405 और धारा 5(1)(सी) में मौजूद नहीं है। अपराध का सार तब भी स्पष्ट किया जा सकता है यदि अपराधी किसी व्यक्ति को ऐसा करने की अनुमति देता है, यानी, "किसी भी व्यक्ति को कानून से विचलित करने की अनुमति देता है जैसा कि धारा के प्रारंभिक भाग में विचार किया गया है।

'अनुमति देता है' शब्द का अर्थ निश्चित रूप से अपराधी स्वयं द्वारा 'बेईमानी से दुर्विनियोग' से अलग होगा। ऐसा हो सकता है कि इस शब्द का अर्थ लापरवाही से या अपराधी की ओर से किसी भी इच्छा के बिना अनुमति देना हो सकता है। इसका मतलब यह भी हो सकता है कि किसी प्रकार की सकारात्मक और मौन सहमति अपराध को समाप्त करने के लिए आवश्यक है। किसी भी स्थिति में, अन्य व्यक्तियों को ऐसा करने की अनुमति देने को भारतीय दंड संहिता की धारा 405 में जगह नहीं है, हालांकि यह धारा "जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति का एेसा करना सहन करना" पर भी विचार करती है। किसी व्यक्ति को एक निश्चित कार्य करने के लिए "अनुमति देना" और किसी व्यक्ति का करना "जानबूझकर सहन करना" के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम की धारा 5(1)(सी) "आपराधिक कदाचार" नामक एक नया अपराध बनाती है और भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तहत अपराध को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है। इस संबंध में धारा 5(1)(ए) और 5(1)(बी) की तुलना भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 और 162 से करना उपयोगी है।जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, ये दोनों धाराएं भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और 162 का गंभीर रूप हैं और नया अपराध बनाकर पहले के अपराध को निष्प्रभावी करने का आशय नहीं हो सकता है। ये दोनों अपराध सह-अस्तित्व में हो सकते हैं और एक को दूसरे

द्वारा आच्छादित करने वाला नहीं माना जाएगा। जब किसी व्यक्ति पर धारा 5(i)(ए) और 5(1)(बी)के तहत आरोप लगाया जाता है तो आचरण को साबित किया जा सकता है, लेकिन धारा 161 और 162 के तहत अपराध की जांच व विचारण में ऐसे आचरण को साक्ष्य में शामिल करना असंभव है। इसी तरह ऐसे कई तत्व हैं जिन्हें धारा 5(1)(सी) के तहत जांच या विचारण में साबित किया जा सकता है, जब किसी व्यक्ति पर भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तहत अपराध का आरोप लगाया जाता है। तब उन तत्वो को अभियोजन पक्ष द्वारा नहीं लाया जा सकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 405 में अपराधी उसे न्यस्त संपति का दूसरे व्यक्ति द्वारा दुर्विनियोग जानबूझकर सहन करना चाहिए, परन्तु धारा 5(1)(सी) में यदि वह किसी अन्य व्यक्ति को बेईमानी से या कपटपूर्वक न्यस्त किसी संपत्ति का दुर्विनियोग करने या अन्यथा अपने उपयोग के लिए संपरिवर्तित करने की अनुमति देता है तब अपराध है। जानबूझकर दूसरे को सहन करना और किसी व्यक्ति को कोई विशेष कार्य करने की अनुमति देने के बीच बहुत बड़ा अंतर है और हमारे विचार में "अनुमति देता है" शब्द अपने अर्थ में बहुत व्यापक है। जानबूझकर किसी सचेतन कार्य की पूर्वकल्पना की जाती है, जबकि लापरवाही से भी कोई दूसरे को कार्य करने की अनुमति दे सकता है।

इसलिए, हमें ऐसा लगता है कि दोनों अपराध विशिष्ट एवं अलग हैं। यह मत *अमरेंद्र नाथ रॉय बनाम राज्य* (सुप्रा) मामले में व्यक्त किया गया

है और हम उसमें व्यक्त विद्वान न्यायाधीशों की राय का समर्थन करते हैं। इसलिए, हमारा निष्कर्ष यह है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम धारा 5(1)(सी)के तहत बनाया गया अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तहत का अपराध से विशिष्ट और अलग है और इसलिए धारा 5(1)(सी) भारतीय दंड संहिता की धारा 405 को निरस्त करने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। यदि ऐसा है, तो संविधान का अनुच्छेद 14 कोई बाधा नहीं हो सकती।

श्री इसहाक का अंतिम तर्क यह है कि इस तथ्य के बावजूद कि अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के तहत है, फिर भी मुकदमा चलाने की मंजूरी आवश्यक है।सभी उच्च न्यायालयों में निर्णयविधि के एक समूह ने यह माना है कि आपराधिक न्यासभंग करने वाला एक लोक सेवक आम तौर पर एक लोक सेवक के रूप में अपनी क्षमता में कार्य नहीं करता है, देखें

6--77 एस.सी. इण्डिया/59

(ए) *राज्य बनाम पांडुरंग बाबूराव*(सुप्रा),

(बी) *भूप नारायण सक्सेना बनाम राज्य*(सुप्रा),

और

(सी) *राज्य बनाम गुलाब सिंह*([1])

हम न्यायाधिपति हरि शंकर और रणधीर सिंह द्वारा व्यक्त मत से सहमत हैं कि किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है और इसके विपरीत न्यायाधिपति मुल्ला द्वारा व्यक्त किया गया मत सही नहीं है।

1955 की आपराधिक अपील संख्या 3 तदनुसार खारिज की जाती है। 1954 की आपराधिक अपील संख्या 42 और 1955 की 97 की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर की जाएगी।

-

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी हुकमसिंह राजपुरोहित(आर.जे.एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकारो को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है आैर किसी अन्य उदेश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक आैर आधिकारिक उदेश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा आैर निष्पादन आैर कार्यान्वयन के उदेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।